संघर्षों के बीच आगे बढ़ती हिन्दी

✍ डॉ. कृष्ण कुमार मिश्र

भाषा मुख से उच्चारित होने वाले शब्दों और वाक्यों आदि का वह समूह है, जिनके द्वारा मन की बात संप्रेषित की जाती है। भाषा भावों तथा विचारों की वाहिनी है। यह वह साधन है, जिसके द्वारा हम अपने विचारों तथा भावनाओं को अभिव्यक्त करते हैं। यह ध्वनियों का समुच्चय है, जिसके जरिये किसी समाज या राष्ट्र के लोग अपने मनोगत भावों तथा विचारों का परस्पर आदान-प्रदान करते हैं। 14 सितम्बर 1949 को भारत की संविधान सभा ने खड़ी बोली में देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली भाषा हिन्दी को राजभाषा का दरजा दिया था, यानी भारत सरकार के कामकाज की भाषा। उस समय यह तय किया गया था कि हिन्दी का प्रचार-प्रसार, सामासिकता तथा इसकी सर्वस्वीकार्यता के लिए प्रयास किए जाएंगे। सुविधा के लिए अगले 15 वर्षों तक सरकारी कामकाज की भाषा के रूप में अंग्रेजी को कायम रखने का प्रावधान किया गया। कालान्तर में राष्ट्रपति के अध्यादेशानुसार अंग्रेजी को बार-बार विस्तार मिलता गया तथा हिन्दी की अनिवार्यता पर जोर नहीं दिया गया। इससे हिन्दी की अनदेखी होती चली गयी तथा उसे वह स्थान आज तक नहीं मिल सका जिसकी वह सचमुच अधिकारिणी है।

राष्ट्रभाषा के निहितार्थ

राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र गूंगा है। राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र की कल्पना भी नहीं की जा सकती। आजादी के पहले से लेकर आज तक देश के सभी राष्ट्रनायकों तथा महापुरुषों ने भारत के लिए राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी की वकालत की है लेकिन अफसोस कि हिन्दी को उसका वाजिब हक आज तक नहीं मिल सका है। धीरे-धीरे लोगों में स्वभाषा के प्रति अनुराग उत्तरोत्तर कम होता जा रहा है। वैसे भी यह पहले से ही कहा जाता है कि हिन्दी भाषी प्रान्तों में भाषायी चेतना का अभाव है। आखिर ऐसे कितने लोग हैं जो हिन्दी को 'अपनी भाषा' मानते हैं तथा उसमें गर्वानुभूति करते हैं। हिन्दी प्रदेशों के छात्रों के लिए हिन्दी भाषा गौण होती जा रही है। वे उसे सिर्फ इम्तहान के समय पढ़कर पास हो जाना चाहते हैं। उन्हें हिन्दी के लेखकों, कवियों, उनकी कृतियों तथा अवदानों से बहुत ज्यादा लेना-देना नहीं है। इन सबके गहरे सामाजिक, समाज वैज्ञानिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक कारण हैं। हिन्दी एक तरह के राजनीतिक दुष्चक्र में फँस गयी है। इस विकट जाल से उसका निकल पाना दिनोंदिन कठिन भी होता जा रहा है।

हिन्दी वास्तव में भारत की जनभाषा है। वह एक मजबूत संपर्क भाषा भी है। वह जन-जन की भाषा है चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान। हिन्दी प्रायः उत्तरी-मध्य भारत के सभी राज्यों में बखूबी पढ़ी, लिखी, बोली व समझी जाती है। लेकिन जब हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने की बात चल रही थी तो कुछ लोगों ने हिन्दी का इसलिए विरोध किया क्योंकि उन्हें लगा कि इससे दूसरी भाषाओं का अहित होगा। जबकि राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी की परिकल्पना इस रूप में ही की गई थी कि अपने-अपने राज्यों में प्रांतीय भाषाएं ही अपने पूरे अधिकार के साथ अपनी-अपनी

हिन्दी वास्तव में भारत की जनभाषा है। वह एक मजबूत संपर्क भाषा भी है। वह जन-जन की भाषा है चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान। हिन्दी प्रायः उत्तरी-मध्य भारत के सभी राज्यों में बखूबी पढ़ी, लिखी, बोली व समझी जाती है।

भूमिकाएं निभाएंगी, जो भूमिका हिन्दी की हिन्दीभाषी राज्यों में होगी, वही भूमिका हिन्दीतर प्रांतों में उनकी अपनी-अपनी भाषाओं की होगी। राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी अपने ही इतर भाषाओं के साथ उनका तालमेल बनाने में सहायक भर होगी। जहाँ उनका अधिकार होगा, वहाँ तो हिन्दी का कोई दखल होगा ही नहीं। लेकिन निहित स्वार्थी तत्वों के दुराग्रह के चलते हिन्दी पर राजनीति की गयी तथा दुष्प्रचार किया गया।

राष्ट्रभाषा का प्रश्न

महामना पंडित मदनमोहन मालवीय जी ने महात्मा गाँधी को एक सम्मेलन के लिए भेजे गए पत्र में कहा था कि, "भाषा माता के समान है। माता पर हमारा जो प्रेम होना चाहिए, वह हम लोगों में नहीं है। हमें अब अपनी मातृभाषा की और उपेक्षा करके उसकी हत्या नहीं करना चाहिए।" महात्मा गाँधी भारत राष्ट्र की राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी को स्थापित करने के प्रबल समर्थक थे और इस रूप में अंग्रेजी से उनका जबर्दस्त विरोध भी था। वे कभी नहीं चाहते थे कि देश को हम अंग्रेजों से तो आजाद करा लें लेकिन अंग्रेजी के आगे नतमस्तक होते रहें और इसका कारण एकदम सीधा था। अंग्रेजी प्रभु वर्ग की भाषा थी और आज भी वह अपने इस अभिजात्य चरित्र को बनाए हुए है। महात्मा गाँधी जी ने सन् 1914 में दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटने पर पुरुषोत्तम दास टंडन को एक पत्र में लिखा था, "मेरे लिए हिन्दी का प्रश्न तो स्वराज का प्रश्न है।" इसके बाद गाँधी जी ने दक्षिण भारत में हिन्दी प्रचार सभा के द्वारा हिन्दीतर भाषी प्रांतों में राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रचार-प्रसार कराया। गाँधी जी समझते थे कि पूरे देश की जनता को अंग्रेजी सिखा पाना न तो संभव होगा और न उचित। ऐसे में देश में कभी भी असली स्वराज नहीं आ सकता। सिर्फ शासक वर्ग का रंग बदलेगा, मानसिकता नहीं और यह बात आज के आजाद भारत की एक कड़वी सच्चाई भी है।

इस सच्चाई को आज 75 साल के आजाद भारत में गाँधी जी के इस कथन से परखा जा सकता है- "अगर स्वराज अंग्रेजी बोलने वाले भारतीयों का और उन्हीं के लिए होने वाला है तो बेशक अंग्रेजी ही राष्ट्रभाषा होगी। लेकिन अगर स्वराज देश के करोड़ों भूखों, निरक्षर भाई-बहनों और दलितों व वंचितों का हो, और इन सबके लिए होने वाला हो, तो हिन्दी ही एकमात्र राष्ट्रभाषा हो सकती है।" विश्व के प्रायः सभी देशों ने अपने ही देश की भाषा को शिक्षा-दीक्षा के लिए स्वीकार किया। यूरोप के स्विट्जरलैंड सरीखे छोटे से देश ने भी अपनी भाषा को अपने यहाँ शिक्षा का माध्यम बनाया है।

भारत में अंग्रेजी को बढ़ावा देने के पीछे ईस्ट इण्डिया कंपनी का राज रहा है। 18वीं सदी के अंत तक आते-आते भारत में अंग्रेजी राज को कायम रखने के लिए बड़ी संख्या में कर्मचारियों और बाबुओं की आवश्यकता महसूस की गई। अधिकारियों के स्तर पर तो अंग्रेजों की ही नियुक्ति होती थी मगर निचले स्तर पर इतनी बड़ी संख्या में अंग्रेजों की नियुक्ति संभव नहीं थी। इस मजबूरी में स्थानीय लोगों को अंग्रेजी में शिक्षित करने के बारे में सोचा गया। लार्ड मैकाले इस विचार का अगुआ था, जिसने भारतीयों को सदा के लिए मानसिक गुलाम बनाना चाहा। वह भारतीयों के बीच से ही एक ऐसी नस्ल पैदा करना चाहता था, जो

तन से हिन्दुस्तानी होगा लेकिन मन से अंग्रेजी। उसका मकसद भारत में ऐसी शिक्षा-व्यवस्था कायम करना था, जिससे भारतीय जीवन-शैली और लोक-संस्कृति का पश्चिमीकरण हो जाए। लार्ड मैकाले की नीति बहुत ही स्पष्ट थी। उसकी सोच थी कि अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार-प्रसार कर भारतीयों को मात्र उतनी ही शिक्षा दी जाए, जिससे कि वे अच्छे नौकर साबित हो सकें।

अफसोस की बात यह है कि देश में अंग्रेजी भाषा का साम्राज्यवाद फिरंगियों के चले जाने पर भी कायम है। हिन्दी माध्यम के विद्यालय पिछड़ते जा रहे हैं तथा उनकी अनदेखी हो रही है। उसके विपरीत गली, मुहल्लों, कस्बों तथा गाँवों तक में अंग्रेजी माध्यम के तथाकथित कॉन्वेंट स्कूल खुल रहे हैं। लेकिन हमारे समाज में अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा का मोह किस कदर गहरा होता जा रहा है, यह एक नितांत विचारणीय विषय है। जब शिक्षा का माध्यम ही हिन्दी नहीं रहेगी तो उसका विकास तथा प्रसार कैसे संभव हो पाएगा? एक भ्रांति जो प्रायः अंग्रेजीदां लोगों द्वारा जोर-शोर से फैलायी जाती रही है वह यह है कि हिन्दी अभी इतनी सुसंपन्न नहीं है कि उसमें उच्च शिक्षा दी जा सके, जबकि सच्चाई यह है कि आज हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य की कमी नहीं है। तकनीकी शब्दों के लिए शब्दावली आयोग द्वारा तैयार बृहत पारिभाषिक शब्द-संग्रह स्नातकोत्तर स्तर तक की विज्ञान शिक्षा के लिए पर्याप्त है। हिन्दी में ढेरों शब्दकोश, समान्तर कोश, पारिभाषिक कोश तैयार हो चुके हैं। हिन्दी की शब्द-संपदा 9 लाख के आंकड़े को कभी की पार कर चुकी है। जरूरत सिर्फ इच्छा शक्ति की है। यदि दृढ़ संकल्प एवं निष्ठा हो तो विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की समूची शिक्षा हिन्दी माध्यम से संभव है।

उदारीकरण तथा बाजारवाद

बाजारवाद के चलते इलेक्ट्रॉनिक तथा प्रिंट माध्यमों में हिन्दी की उपस्थिति बढ़ रही है। पत्रकारिता, संचार माध्यमों, व्यावसायिक उद्यमों, विज्ञापनों, चैनलों, वेबसाइटों, इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों से हिन्दी जुड़ने की कोशिश कर रही है। इन सारे माध्यमों को हिन्दी की जरूरत भी है क्योंकि उन्हें हिन्दी के जरिये खरीददारों और उपभोक्ताओं के पास पहुँचने की जरूरत है। एक अनुमान के मुताबिक आज भी इस देश में बमुश्किल पाँच से सात प्रतिशत लोग अंग्रेजी का जीवन जीते हैं। इसलिए बाजार से जुड़े ये सारे माध्यम हिन्दी का उपयोग कर रहे हैं। हिन्दी बाजार की भाषा बने इसमें कोई हर्ज नहीं है। लेकिन चिंता इस बात की है कि यह दिनोंदिन बाजारू बनती जा रही है। इसकी स्वाभाविक विशिष्टता लुप्त हो रही है। अंग्रेजी के साथ घालमेल करके इसे विरूपित किया जा रहा है। हिन्दी फिल्मों के नाम अब अंग्रेजी में रखे जा रहे हैं। हिन्दी फिल्मों के सितारे फिल्म समारोहों में अंग्रेजी में बोलते नजर आते हैं। हिन्दी में सिर्फ वे रटे-रटाये संवाद बोल पाते हैं। विज्ञापन की दुनिया में हिन्दी बड़े पैमाने पर रोमन लिपि में सड़कों, गली-चौराहों पर देखी जा सकती है।

भारत में अंग्रेजी को बढ़ावा देने के पीछे ईस्ट इण्डिया कंपनी का राज रहा है। 18वीं सदी के अंत तक आते-आते भारत में अंग्रेजी राज को कायम रखने के लिए बड़ी संख्या में कर्मचारियों और बाबुओं की आवश्यकता महसूस की गई। अधिकारियों के स्तर पर तो अंग्रेजों की ही नियुक्ति होती थी, मगर निचले स्तर पर इतनी बड़ी संख्या में अंग्रेजों की नियुक्ति संभव नहीं थी। इस मजबूरी में स्थानीय लोगों को अंग्रेजी में शिक्षित करने के बारे में सोचा गया।

एक जमाने में अंग्रेजों ने पूरी कोशिश की थी कि हिन्दी की लिपि देवनागरी की जगह रोमन हो लेकिन भारतीयों के प्रचण्ड विरोध के चलते उन्हें अपनी योजना को टालना पड़ा था लेकिन जो चीज गोरे अंग्रेज नहीं कर सके, वह हमारे बीच के ही अंग्रेजीपरस्त बखूबी कर रहे हैं। इन विज्ञापनों के माध्यमों से जो आज की पीढ़ी हिन्दी सीख रही है, वह न तो पूरी तरह हिन्दी है और न ही अंग्रेजी।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि हिन्दी का फलक बढ़ा है। वह देश की चारदीवारी को पार कर दूसरे महाद्वीपों में पहुँच चुकी है। फिर भी कुछ लोग कहते हैं कि हिन्दी केवल साहित्यिक विमर्श की भाषा है, जो सही नहीं है। हिन्दी में मौलिक चिंतन, ज्ञान-विज्ञान से संबंधित नवाचार, का काम उतना नहीं हो रहा है, जितना होना चाहिए। समाज विज्ञान, मानविकी से लेकर प्रकृति विज्ञान तक में प्राय: अनुवाद ही मिलता है। हिन्दी में आज विज्ञान की पत्रिकों बहुत कम हैं। समाजविज्ञान की पत्रिकों भी कम ही हैं। ऐसी स्थिति में हिन्दी उच्च शिक्षा का माध्यम नहीं बन पा रही है। हिन्दी दिवस मनाने के पीछे यह भावना थी कि उससे सरकारी तंत्र को उसकी जिम्मेदारी याद दिलायी जाए। लेकिन वह एक रस्म अदायगी बन गया है। आज अंग्रेजी के सामने सभी भारतीय भाषों संघर्ष कर रही हैं। भारतीय भाषाओं के लिए यह समय बहुत निर्णायक है। हिन्दी का सबल पक्ष है उसके बोलने वालों की विशाल आबादी तथा हिन्दी प्रदेशों का विराट भूभाग। इसलिए आज सभी लेखकों, रचनाकारों, पत्रकारों, प्रकाशकों, वितरकों की जिम्मेदारी बढ़ जाती है कि वे और ताकत तथा संकल्प से अपनी भाषा के लिए कार्य करें। चरैवेति, चरैवेति।

एसोसिएट प्रोफेसर
होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केन्द्र
टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान
मुंबई-400088

ग़ज़ल

क़ाफ़िले

कई क़ाफ़िले गुजरे इस राह से,
मगर इसकी मंजिल न बता पाया कोई।

कई पीर-पैग़म्बर आए इस जहाँ में,
पर ख़ुदा की ख़ुदाई न बता पाया कोई।

कई लैला-मजनूं फिरा किए इस चमन में,
पर मुहब्बत की तपिश न बता पाया कोई।

कई आमिर सुलतान राज किया किए यहाँ,
पर सत्ता का नशा न बता पाया कोई।

मैकदे में रिन्दों ने खूब छलकाया सागर को,
पर सुरा का स्वाद न बता पाया कोई।

कई ज्ञानी-मानी पैदा हुए इस धरा पर,
मगर ज्ञान की सीमा न बता पाया कोई।

तेरे जैसी कितनी ही ज़िंदगी आ चली गई,
पर मौत होती है कैसी न बता पाया कोई।

ख़ामोशी

कब से यूँ ही ख़ामोश बैठे हो,
क्यूँ नहीं लबों से कुछ कहते हो।

ख़ामोशी कब से अपनी सदा हुई,
क्यूँ ज़िंदगी के ज़ुल्म सहते हो।

ज़िंदगी की ख़ामोशी लाती है अज़ाब,
क्यूँ इसके बहकावे में बहते हो।

इसका काम ही दिल जलाना है,
क्यूँ इसके दामन ही में रहते हो।

ज़िंदगी के परे भी हैं ज़िंदगियां,
इसे अलविदा क्यूँ नहीं कहते हो।

✍ **डॉ. दिनेश जाधव, इंदौर**